जगदीशचंद्र माथुर

जन्म : 16 जुलाई 1917 ।
निधन : 14 मई 1978 ।
जन्म-स्थान : शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश ।
शिक्षा : एम० ए० (अंग्रेजी), इलाहाबाद विश्वविद्यालय । 1941 में आई० सी० एस० परीक्षा उत्तीर्ण । प्रशिक्षण के लिए अमेरिका गए और उसके बाद बिहार में शिक्षा सचिव हुए ।
कार्य : सन् 1944 में बिहार के सुप्रसिद्ध सांस्कृतिक उत्सव वैशाली महोत्सव का बीजारोपण किया । ऑल इंडिया रेडियो में महानिदेशक रहे, फिर सूचना और प्रसारण मंत्रालय में हिंदी सलाहकार के पद पर भी कार्य किया । हार्वर्ड विश्वविद्यालय के विजिटिंग फेलो रहने के अतिरिक्त अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों से जुड़े थे ।
सम्मान : विद्या वारिधि की उपाधि से विभूषित, कालिदास अवार्ड और बिहार राजभाषा पुरस्कार से सम्मानित ।
कृतियाँ : 1936 में प्रथम एकांकी 'मेरी बाँसुरी' का मंचन व 'सरस्वती' में प्रकाशन । पाँच एकांकी नाटकों का संग्रह 'भोर का तारा' 1946 में प्रकाशित । इसके बाद 'ओ मेरे सपने' (1950), 'मेरे श्रेष्ठ रंग एकांकी', 'कोणार्क' (1951), 'बंदी' (1954), 'शारदीया' (1959), 'पहला राजा' (1969), 'दशरथ नंदन' (1974) 'कुँवर सिंह की टेक' (1954) और 'गगन सवारी' (1958) के अलावा दो कठपुतली नाटक भी लिखे । 'दस तस्वीरें' और 'जिन्होंने जीना जाना' में रेखाचित्र और संस्मरण हैं । 'परंपराशील नाट्य' (1960) उनकी समीक्षा दृष्टि का परिचायक है । 'बहुजन संप्रेषण के माध्यम' जनसंचार पर विशिष्ट पुस्तक और 'बोलते क्षण' निबंध संग्रह है ।

जगदीशचंद्र माथुर एक प्रतिभाशाली लेखक, नाटककार, संस्कृतिकर्मी एवं प्रशासक थे । उनका कार्यक्षेत्र बिहार था और वे साहित्य-संस्कृति के संसार में बिहार की ही विशिष्ट प्रतिभा के रूप में जाने जाते थे । इतिहास, संस्कृति, परंपरा और लोकवार्ता की भूमिका उनके दृष्टिकोण के निर्माण में आधारभूत थी । नाटक और उसके बहुविध शास्त्रीय एवं लोकरूप हमेशा उनके आकर्षण के केंद्र में रहे । उनके नाट्यलेखन में रंगमंच की कल्पनाशील सक्रिय चेतना समाहित थी । इसका प्रमाण उनकी छोटी-बड़ी तमाम नाट्य कृतियाँ हैं जो मंचन और अभिनेयता की दृष्टि से सफल मानी जाती हैं ।

श्री माथुर के लेखन में रचना भूमि का दायरा आपेक्षिक रूप से सीमित और छोटा है, उसमें प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण और अनुभव की शायद न्यूनता भी है जिसे वे अध्ययन, कल्पना आदि के द्वारा पूरा करते हैं; किंतु उनके साहित्य में संकीर्णता कहीं नहीं आने पाई । इसके बदले विस्मयजनक रूप में एक संवेदनशील उदार दृष्टिकोण उनके लेखन में प्रकट होता है और परिष्कृत रुचि के इस लेखक के साहित्य को ऊँचाई प्रदान करता है । श्री माथुर ने लिखना प्राय: चौथे दशक में ही शुरू कर दिया था किंतु उन्होंने एक मनस्वी लेखक के रूप में अपनी पहचान नेहरू युग में बनाई ।

उनके लेखन के बहुलांश पर नेहरूयुग की कल्पनाशीलता, नवनिर्माण चेतना तथा आधुनिक वैज्ञानिक परिदृष्टि की छाप है । तदनुरूप वे जीवन और रचना दोनों में एक सुव्यवस्था, सुरुचि और कलात्मकता को आवश्यक मानते थे । सौंदर्यप्रियता और लालित्यबोध उनकी अभिरुचि के अंग थे । इन बातों को उनकी नाट्य रचनाएँ विश्लेषणों में सिद्ध करती दिखलाई पड़ती हैं तथा उनके संस्मरण विशेष रूप में प्रमाणित करते हैं । ये संस्मरण किन व्यक्तियों के हैं और उनके किन गुणों, प्रसंगों अथवा व्यक्तित्व-चरित्र के पक्षों को लेखक स्मरण करता है; स्मरण करने की शैली और स्मृतियों के संप्रेषण की भाषा क्या है, यह सब देखना बहुत दिलचस्प है । इसलिए भी कि इससे लेखक के अपने बारे में बहुत कुछ अंतरंगतापूर्वक व्यक्त होता है ।

जगदीशचंद्र माथुर ने कुछ ललित, व्यक्ति व्यंजक या रम्य निबंध भी लिखे हैं । ये निबंध व्यक्ति, भाव और वस्तु प्रधान हैं । इनमें से एक निबंध उनकी पुस्तक 'बोलते क्षण' से यहाँ प्रस्तुत है जिसमें उनकी तीनों कोटियों के निबंधों का समाहार हो जाता है । यह निबंध 'सदानीरा' गंडक को निमित्त बनाकर लिखा गया है पर उसके किनारे की संस्कृति और जीवन प्रवाह की अंतरंग झाँकी पेश करता हुआ जैसे स्वयं गंडक की तरह ही प्रवाहित होता दिखलाई पड़ता है ।

◆ ◆ ◆

"अजीब है यह पानी । इसका अपना कोई रंग नहीं, पर इंद्रधनुष के समस्त रंगों को धारण कर सकता है । इसका अपना कोई आकार नहीं, पर असंख्य आकार ग्रहण कर सकता है । इसकी कोई आवाज नहीं, पर वाचाल हो उठता है तो इसका भयंकर वज्र निनाद दूर-दूर तक गूँज उठता है । गतिहीन है, पर गतिमान होने पर तीव्र वेग धारण करता है और उन्मत्त शक्ति और अपार ऊर्जा का स्रोत बन जाता है । उसके शांत रूप को देखकर हम ध्यानावस्थित हो जाते हैं तो उग्र रूप को देखकर भयाक्रांत । जीवनदायिनी वर्षा के रूप में वरदान बनकर आता है तो विनाशकारी बाढ़ का रूप धारण कर जल-तांडव भी रचता है । अजीब है यह पानी !"

– अमृतलाल वेगड़

ओ सदानीरा

बिहार के उत्तर-पश्चिम कोण में चंपारन क्षेत्र की भूमि पुरानी भी है और नवीन भी । हिमालय की तलहटी में जंगलों की गोदी से उतारकर मानव, मानो शैशव-सुलभ अंगों और मुस्कान वाली धरती को, ठुमक-ठुमककर चलना सिखा रहा है । नए खेत, नई पैदावार और बीच-बीच में पलाश, साल एवं अन्य जंगली वृक्षों की भटकी सी पाँतें । दूर-दूर तक समतल की गई भूमि, ट्रैक्टर की आतुर अंगुलियों ने मानो जिसे परिहतवसना कर दिया है । तभी तो लाज से सिकुड़ी सी इन नदियों में जल नाममात्र को रह गया है ! बालू की डगरों के बीच खोई सी रह गई हैं ये धाराएँ जो कभी वनश्री के ढके वक्षस्थल में किलकती रहती थीं !

अब वे किलकती नहीं हैं । या तो लाज में गड़ी निस्पंद सरकती रहती हैं, या बरसात के दिनों उन्मत्तयौवना वीरांगनाओं की भाँति प्रचंड नर्तन करती हैं । मसान, सिकराना, पंडई भुजाएँ फैला-फैलाकर उसी मानव के पौरुष को ललकारती हैं जिसने उन्हें निर्वसन किया है । सन् बासठ की बाढ़ का दृश्य जिन्होंने देखा उन्हें 'रामचरितमानस' में कैकेयी के क्रोधरूपी नदी की बाढ़ की याद आई होगी ।

लेकिन ढाई हजार वर्ष पहले जब गौतम बुद्ध इन नदियों के किनारे-किनारे पाटलिपुत्र से मल्लों, मौर्यों और शाक्यों को उपदेश देने जाया करते थे तब ये नदियाँ संयमित थीं । घना जंगल था और वृक्षों की जड़ों में पानी रुका रहता था । बाढ़ आती थी पर इतनी प्रचंड नहीं । पिछले छह-सात सौ साल में महावन, जो चंपारन से गंगा तक फैला हुआ था, कटता चला गया ऐसे ही जैसे अगणित मूर्तियों का भंजन होता गया । वृक्ष भी प्रकृति देवी, वनश्री की प्रतिमाएँ हैं । वसुंधराभोगी मानव और धर्मांधमानव-एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

एक कहानी सुनी । यहाँ बारहवीं सदी से लगभग तीन सौ वर्ष तक कर्णाट वंश का राज्य था । प्रथम राजा नान्यदेव, चालुक्य नृपति सोमेश्वरपुत्र विक्रमादित्य के सेनापति, नेपाल और मिथिला की विजय यात्रा पर आए और फिर यहीं बस गए । इस तरह सुदूर दक्षिण का रक्त और संस्कृति इस प्रदेश की निधि बने । कितने लोग इतिहास की इस कीमियाई प्रक्रिया से परिचित हैं ? कर्णाट वंश के राजा हरिसिंहदेव को 1325 ई० में मुसलमान आक्रमणकारी गयासुद्दीन तुगलक का मुकाबला करना पड़ा । विशाल आक्रमणकारी सेना जंगल के किनारे खड़ी थी । हरिसिंहदेव का दुर्ग वन की गहराई में निश्चल छिपा हुआ था । वह घना वन मजबूत और मोटी प्राचीरों से अधिक दुर्भेद्य जान पड़ा । सुलतान घोड़े से उतरा और तलवार से उसने एक विशाल विटप के तने पर आघात किया । उसके गिरते ही बिजली सी दौड़ गई उसके

सैनिकों में, और हजारों तलवारें घने वन के वृक्षों पर टूट पड़ीं । देखते ही देखते जंगल के बीच राह खुलती चली गई । हरिसिंहदेव का गढ़ अपना घोंसला खो बैठा और उन्हें नेपाल भाग जाना पड़ा ।

तब से जंगल जो कटने शुरू हुए तो कटते ही आ रहे हैं । नीचे धरती उपजाऊ मिलती है, राशि-राशि शस्यों की खान, जहाँ बीज डालने भर की दरकार है । घने जंगलों की स्मृति में मानो पैदावार ललक उठती है । यों चाहे सात सौ वर्ष पूर्व आक्रमणकारी की तलवार ने जंगी के द्वार खोले थे, अब तो हल और ट्रैक्टर ही धरती के खजाने को अनावृत कर रहे हैं ।

इस धरती के निवासी भी प्राचीन और नवीन के मिश्रण हैं । जान पड़ता है, आदिकाल से आने-जानेवालों का ताँता बँधा रहा है । जंगल से छीनी गई धरती को जोतने के लिए पुष्ट हाथ प्रायः बाहर से ही आते रहे । पिछले पाँच-सात सौ वर्षों में थारू और धाँगड़ जातियाँ यहाँ आकर बसीं । थारुओं के उद्भव के विषय में अनेक मत हैं । वे लोग अपने को आदिवासी नहीं मानते; थारू शब्द को थार-राजस्थान से निकला मानते हैं ।

धाँगड़ों को 18वीं शताब्दी के अंत में लाया गया, नील की खेती के सिलसिले में । ये लोग दक्षिण बिहार के छोटा नागपुर पठार से लाए गए और वहाँ की आदिवासी जातियों-ओराँव, मुंडा, लोहार इत्यादि-के वंशज हैं । 'धाँगड़' शब्द का अर्थ ओराँव भाषा में है-भाड़े का मजदूर । इनके लोकगीतों में दो सौ वर्ष पूर्व के उस महाप्रस्थान की कथा बिखरी पड़ी है जब नील के खेतों पर काम करने के लिए अंग्रेज साहब और रामनगर के तत्कालीन राजा इन्हें यहाँ लाए और उसके बाद बरसों तक इन्हें लगभग गुलामी का जीवन बिताना पड़ा । आपस में धाँगड़ मिश्रित ओराँव भाषा में बात करते हैं और दूसरों से भोजपुरी या मधेसी में । दक्षिण बिहार के गया जिले से भुइँया लोग भी इसी भाँति नील की खेती के लिए हिमालय की इस तलहटी में लाए गए । ये आदिवासी नहीं हैं । संभवतः मुसहर वर्ग के अंग हैं । इन कर्मठ मजदूरों से नील कोठियों के साहब दासों की भाँति काम लेते थे, किंतु संपदा में भागी ये कभी न बन पाए ।

आनेवालों का ताँता बँधा ही रहा है । आक्रमणकारियों से त्रस्त राजकुल के वंशज, आजीविका के खोजी आदिवासी और हरिजन मजदूर, उर्वरा भूमि से संपदा प्राप्त करने के अभिलाषी पछाँही जमींदार तथा वे गोरे साहब, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के इस अज्ञात से कोने में अपना निजी वैभवशाली साम्राज्य स्थापित कर रखा था, सभी को आश्रय दिया इस भूमि ने ।

पिछले दस-बारह वर्षों में एक नया त्रस्त समुदाय यहाँ आया; पूर्वी बंगाल के शरणार्थी । चंपारन में शायद पहला प्रयास किया गया, पूर्वी बंगाल के शरणार्थियों को निश्चित योजना के अनुसार बसाने का। थारुओं और धाँगड़ों के बीच यह शस्य-श्यामला भूमि उनकी भी धातृ बनी है । बिछुड़ी माता के सुखद संस्पर्श की स्मृति धान के खेतों में इन्हें मिली और हिमालय की पदस्थली पर मानो गंगासागर ने चरणोदक उंडेला । इतिहास की उंगलियाँ ऐसी वीणा पर थिरकीं जिसकी हर झंकार एक अलग स्मृति की प्रतिध्वनि है ।

उस दिन चंपारन के एक सुदूर गाँव में इस वीणा की विविध रागिनी सुनने को मिली । थारुओं की अनुपम गृहकला, धाँगड़ों का नर्तन, पूर्वी बंगाल के पुनर्वासित किसानों के करुण कीर्तन ।

यद्यपि मेरे अनुरोध पर एक देहाती प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था, तथापि थारुओं की कला

मूलत: उनके दैनिक जीवन का अंग है । जिस पात्र में धान रखा जाता है वह सींक का बनाया जाता है, कई तरह के रंगों और डिजाइनों के साथ । सींक की रंग-बिरंगी टोकरियों के किनारे सीप की झालर लगाई जाती है । झोंपड़ी में प्रकाश के लिए जो दीपक है उसकी आकृति भी कलापूर्ण है । शिकारी और किसान के काम के लिए जो पदार्थ मूँज से बनाए जाते हैं, उनमें भी सौंदर्य और उपयोगिता का अद्भुत मिश्रण दीख पड़ा । किंतु सबसे मनोहर था नववधू का एक अनोखा अलंकरण जो मात्र आभूषण ही नहीं है । हर पत्नी दोपहर का खाना लेकर पति के पास खेत में जाती है । नववधू जब पहली बार इस कर्त्तव्य को निबाहने जाती है तो अपने मस्तक पर एक सुंदर पीढ़ा रखती है जिसमें तीन लटें-वेणियों की भाँति लटकी रहती हैं । हर लट में धवल सीपों और एक बीजविशेष के सफेद दाने पिरोए होते हैं । पीढ़े के ऊपर सींक की कलापूर्ण टोकरी में भोजन रखा होता है । टोकरी को दोनों हाथों से सँभाले जब लाज भरी, सुहागभरी वधू धीरे-धीरे खेत की ओर अपने पग बढ़ाती है तो सीप की वेणियाँ रजत-कंकणों की भाँति झंकृत हो उठती हैं और सारा गाँव जान लेता है कि वधू अपने प्रियतम को कलेउ कराने जा रही है ।

इस मधुर और स्निग्ध संस्कृति की अपेक्षा धाँगड़ों का सामाजिक जीवन अधिक प्रखर और उल्लासपूर्ण है । स्त्री-पुरुष दोनों ढलती शाम के मंद प्रकाश में सामूहिक नृत्य करने लगे । ओराँव नृत्य से मिलते-जुलते ही नृत्य होते हैं धाँगड़ों के । किंतु कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं । मर्द अपने दाहिने हाथ में रंगीन रूमाल लिए उसे हिलाते जाते हैं । यह नेपाल का प्रभाव जान पड़ता है । गीतों में कल्पना और चित्रोपमता अधिक जान पड़ी । भाषा में भोजपुरी और ओराँव का मिश्रण था । नृत्य के बीच-बीच में कुछ लड़के तरह-तरह के पशुओं की आकृति बनाकर आते हैं और गीतों की मधुर व्यंजना के बीच प्रहसन की छवि दिखा जाते हैं । रीछ, शेर, हिरण इन निसर्ग प्रेमी नर्तकों के बीच हिल-मिल कुदक रहे हैं । लगा कि सदियों की नागरिक सभ्यता के अनगिनती पर्दे उठ गए और निर्बंध नर-नारियों की आदिम किंतु सुषमा भरी झाँकी मिली ।

और उसके बाद पूर्वी बंगाल के कीर्तन, गंभीर, विषादपूर्ण वातावरण में अनादिगूंज का स्रोत बह निकला । भागीरथी के नाविकों की याद प्रतिध्वनित होने लगी चंपारन के खलिहानों और जंगलों में । बरसों बाद शायद इन कीर्तनों की ऊर्ध्व तानें छोटी होती जाएँ; शायद इनका विषाद, स्मृति की रेखाएँ मलीन हो जाएँ और उल्लास की कड़ियाँ मुखर हो उठें ।

उल्लास ! रात बीत चली और दिवस का संघर्ष अँधेरे के पर्दे के पीछे सजग हो उठा । धरती देती है किंतु यहाँ का जन-जीवन समृद्ध नहीं बन सका । बेतिया राज की जमींदारी में तो अंग्रेज ठेकेदार बन गए और उन्नीसवीं सदी में नील की खेती का विस्तार किया । नील से ही उन दिनों रंग बनते थे और इसीलिए नील की पाश्चात्य देशों में बहुत माँग थी । लाखों की संपदा उन अंग्रेज ठेकेदारों के हाथ लगी किंतु रैयत का कोई लाभ नहीं हुआ । बेतिया राज से बहुत कम अदायगी पर हजारों एकड़ जमीन इन गोरे ठेकेदारों ने ली । ठेठ देहात में उनकी भव्य कोठियाँ खड़ी हो गईं । किसानों से जबरदस्ती नील की खेती कराई गई । हर बीस कट्ठा जमीन में तीन कट्ठा नील की खेती के लिए हर किसान को रखना लाजिमी था । 20वीं सदी के प्रारंभ में जब केमिकल रंगों के ईजाद होने पर नील की माँग कम हो गई तब भी यह जबरदस्ती चलती रही और तिनकठिया से छूट पाने के लिए किसानों को मजबूर किया गया कि वे मोटी रकमें गोरे ठेकेदारों को दें । चंपारन और कुछ आसपास के इलाकों में इन निलहे साहबों का निष्कंटक

साम्राज्य था उन दिनों । जिस रास्ते पर साहब की सवारी जाती उस पर हिंदुस्तानी अपने जानवर नहीं ले जा सकते थे । यदि किसी रैयत के यहाँ उत्सव या शादी–विवाह होते तो साहब के यहाँ नजराना भेजना पड़ता; साहब बीमार पड़ता तो रैयतों से इलाज के लिए वसूली होती; साहब हाथी खरीदता तो रैयत को अपनी गाढ़ी कमाई में से कुछ न कुछ देना होता । अमोलवा कोठी के साहब का नाम था एमन । भीषण आतंक था एमन साहब का । किसीं भी रैयत की झोंपड़ी में आग लगा देना, किसी को जेल में ठूँस देना यह सब रोज का काम था । तत्कालीन शासन निलहे गोरों के हाथ का पुतला था । उन दिनों उत्तर बिहार में दौरा करने वाले अफसरों के लिए देहात में डाकबंगले नहीं बनते थे । वे सभी साहबों की कोठियों में ठहरते थे । दक्षिण बिहार के बागी विचारों का असर चंपारन में देर से पहुँचे इसीलिए गंगा पर पुल बनाने की स्कीम में तत्कालीन शासन ने कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई और यों बरसों तक चंपारन में गोरे निलहों का राज ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में पनपता रहा ।

और आतंक और दैन्य, समृद्धि और बेबसी के उस आलम में सन् 1917 के अप्रैल मास में एक बिजली सी कौंधी । चंपारन में गाँधीजी के चमत्कार की कथा स्वयं राजेंद्र बाबू ने लिखी है । स्वातंत्र्य युद्ध के महानाटक के उस नांदीपाठ में मानो सूत्ररूप में संघर्ष और विजय की सारी गाथा ही समा गई । यहाँ उसका ब्यौरा नहीं लिखूँगा । पर मई सन् 62 में मुझे एक अभूतपूर्व सौभाग्य प्राप्त हुआ । मैं तीर्थयात्रा पर निकला, उन सभी स्थानों की रज लेने जहाँ गाँधीजी ने सन् 1917 का अभियान किया था । उस तीर्थयात्रा में मुझे सत्संग मिला कुछ उन महानुभावों का जो सन् 17 में गाँधीजी के साथ थे । सोने में सुहागा । मोतिहारी में मिले थे श्री रामदयाल साह, गाँधीजी के रहने–सहने का प्रबंध जिनके हाथों हुआ था एवं श्री हरवंस सहाय जो मुजफ्फरपुर से मोतिहारी गाँधीजी के साथ गए थे और उन वकीलों में थे जो उस आंदोलन में उनके सलाहकार रहे । लौटने पर मुजफ्फरपुर में श्री रामनौमी प्रसाद से मुलाकात और देर तक बातें हुईं । रामनौमी बाबू और राजेंद्र बाबू उन दिनों गाँधीजी के साथियों में अग्रगण्य थे । जिस तेजस्वी किसान के आग्रह पर गाँधीजी ने चंपारन जाना स्वीकार किया, वह राजकुमार शुक्ल सन् 17 के पहले से ही श्री रामदयाल साह, श्री रामनौमी प्रसाद और श्री हरवंश सहाय इत्यादि के संपर्क में आया था । राजकुमार शुक्ल की सन् 30 के आसपास मृत्यु हो गई ।

किंतु मेरा अविस्मरणीय अनुभव रहा सुदूर भितिहरवा गाँव में । यह गाँव अमोलवा के निकट है जहाँ सन् 17 में एमन साहब की तूती बोलती थी । जब गाँधीजी चंपारन की रैयत को भय और अत्याचार के चंगुल से बचाने का प्रयत्न कर रहे थे तब उन्होंने ग्रामीण जनता की सामाजिक अवस्था के सुधार का भी श्रीगणेश किया । श्री रामनौमी प्रसाद ने बताया कि एक दिन किसी गाँव में किसानों की शिकायतों का अध्ययन करने गाँधीजी जा रहे थे उनके साथ । दूर जाना था । हाथी पर दोनों सवार थे । कड़ी धूप थी । तभी गाँधीजी ने ग्रामों की दुरवस्था को दूर करने में शिक्षा की महत्ता पर अपने विचार प्रकट किए । उन्होंने कहा कि जब तक ग्रामीण बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं होगी तब तक केवल आर्थिक समस्याओं को सुलझाने से काम नहीं चलेगा । उन्होंने कहा कि वे चंपारन में कुछ ग्रामीण विद्यालयों की स्थापना करना चाहते हैं । थोड़े दिन बाद उन्होंने तीन गाँवों में आश्रम विद्यालय स्थापित किए–बड़हरवा, मधुबन और भितिहरवा । कुछ निष्ठावान कार्यकर्ताओं को तीनों गाँवों में तैनात किया । वे कार्यकर्ता आए गुजरात और महाराष्ट्र से । बड़हरवा का विद्यालय विदेश में शिक्षाप्राप्त इंजीनियर श्री बवनजी गोखले और उनकी विदुषी

पत्नी अवंतिकाबाई गोखले ने चलाया । साथ में देवदास गाँधी भी थे । मधुबन में गाँधीजी ने गुजरात से नरहरिदास पारिख और उनकी पत्नी तथा अपने सेक्रेटरी महादेव देसाई को भेजा । कुछ दिन आचार्य कृपलानी भी वहाँ रहे । भितिहरवा के अध्यक्ष थे वयोवृद्ध डॉक्टर देव और सोमन जी । बाद में वहाँ पुंडलीक जी गए । स्वयं कस्तूरबा भितिहरवा आश्रम में रहीं और इन कर्मठ और विद्वान स्वयंसेवकों की देखभाल करती रहीं ।

इन विद्यालयों का आदर्श क्या था ? इस बारे में गाँधीजी ने एक पत्र लिखा चंपारन के तत्कालीन अंग्रेज कलक्टर को, जिससे शिक्षा संबंधी उनके आदर्शों पर प्रकाश पड़ता है । "....मैंने इन स्कूलों में किसी तरह का नपा-तुला पाठ्यक्रम चालू नहीं किया है, क्योंकि मैं तो पुरानी लीक से हटकर चल रहा हूँ । वर्तमान शिक्षा पद्धति को तो मैं खौफनाक और हेय मानता हूँ । छोटे बच्चों के चरित्र और बुद्धि का विकास करने के बजाय यह पद्धति उन्हें बौना बनाती है । अपने प्रयोग में वर्तमान पद्धति के गुणों को ग्रहण करते हुए मैं उसके दोषों से बचने की चेष्टा करूँगा । मुख्य उद्देश्य यह होगा कि बच्चे ऐसे पुरुष और महिलाओं के संपर्क में आएँ जो सुसंस्कृत हों और चरित्र जिनका निष्कलुष हो । मैं तो इसे ही शिक्षा मानता हूँ । अक्षरज्ञान तो इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक साधन मात्र है । जीविका के लिए जो बच्चे नए साधन सीखना चाहते हैं उनके लिए औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी । इरादा यह नहीं है कि शिक्षा पा लेने के बाद ये बच्चे अपने वंशगत व्यवसायों को छोड़ दें । जो ज्ञान वे स्कूल में प्राप्त करेंगे उसका उपयोग खेती और ग्रामीण जीवन को परिष्कृत करने में होगा ।" कुछ ही समय के लिए सही, गाँधीजी के इन आदर्शों को भितिहरवा में भी कार्यान्वित करने की चेष्टा की गई ।

उसी भितिहरवा में मैं पहुँचता हूँ और मेरा भाग्य देखिए कि उसी दिन वहाँ मौजूद थे श्री पुंडलीक जी । सन् 17 में इन्हीं पुंडलीक जी को गाँधीजी ने बेलगाँव से बुलाया, भितिहरवा आश्रम में रहकर बच्चों को पढ़ाने के लिए और ग्रामवासियों के दिल से भय दूर करने के लिए । वे लगभग एक साल रहे और फिर अंग्रेज सरकार ने उन्हें जिले से निर्वासित कर दिया । लेकिन इतना समय बीत जाने पर भी हर दो-तीन साल में अपने पुराने स्थान को देखने पुंडलीक जी आ जाते हैं । उनके शिष्य भी मौजूद हैं—वृद्ध हो चले हैं । किंतु पुंडलीक जी का तेजस्वी व्यक्तित्व, बलिष्ठ शरीर, दबंग आवाज साक्षी हैं उस अग्निशिखा के जिसने गाँधीजी के शीतल बंधन में बँध जाना मंजूर किया ।

पुंडलीक जी ने वह कमरा दिखाया जहाँ बैठकर गाँधीजी काम करते थे और वह मेज जिसपर शायद उन्होंने चिट्ठियाँ लिखीं । एक मठ के निकट यह आश्रम है । गाँव में गाँधीजी को आश्रय देने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ी । मठ के महंत ने एक महुए के पेड़ के नीचे जगह दी । गाँधीजी ने खटिया बिछाई और बाद में एक झोंपड़ी बनाई जिसमें डॉ० देव आकर रहे और आश्रम को चलाते रहे । उस झोंपड़ी को एमन साहब के कर्मचारियों ने जला भी दिया । बाद में वह खपरैल का भवन बना जो अब भी बहुत कुछ मौलिक अवस्था में है । कस्तूरबा यहाँ रहकर आश्रम के कार्यकर्ताओं की देखभाल करतीं । गाँधीजी प्राय: बेतिया और मोतिहारी में ही रहते ।

पुंडलीक जी के तीन-चार शिष्य भी मिले और पुंडलीक जी ने सन्' 17 के अपने रोचक अनुभवों की कथाएँ भी सुनाईं । एक दिन एमन साहब इनके आश्रम में आया । कायदा था कि साहब जब आए

तो गृहपति उसके घोड़े की लगाम पकड़े । पुंडलीक जी ने कहा, ''नहीं, उसे आना है तो मेरी कक्षा में आए; मैं लगाम पकड़ने नहीं जाऊँगा ।'' पुंडलीक जी ने गाँधीजी से सीखी निर्भीकता और वही निर्भीकता उन्होंने गाँववालों को दी । चंपारन अभियान का सबसे बड़ा वरदान यही निर्भीकता थी । आज जब हम स्वतंत्रता के वातावरण में स्वच्छंदता का भी नर्तन देखते हैं, तो शायद हम उस निरंकुशता के आतंक का अंदाज भी नहीं लगा सकते जिसकी छाया में हमारे अगणित देशवासी इन ग्रामीण अंचलों में कालयापन करते थे । गाँधीजी ने उस दुर्भेद्य अंधकार को चीर दिया ।

किंतु उसी चंपारन में उनकी दूसरी सीख को हमारा शिक्षित समाज हृदयंगम नहीं कर सका । मैंने गाँधीजी का तत्कालीन पत्र व्यवहार अंशतः पढ़ा है । एक भी वाक्य ऐसा नहीं लिखते थे जिसके तथ्य की उन्हें पूरी जानकारी न हो । अधिकांश पत्र अंग्रेज अधिकारियों को लिखे गए थे । उनके पास तरह-तरह की खबरें आतीं–अतिरंजनापूर्ण । आजकल का जमाना होता तो लोग उन खबरों को समाचारपत्रों में छापते; क्रोधपूर्ण दोषारोपण करते । किंतु गाँधीजी हर बात को तोलते, स्वयं सत्यापन करते । बिना छानबीन किए किसी भी मामले पर नहीं लिखते । समाचारपत्रों में अपनी 'एन्क्वायरी' के समाचार बहुत कम देते । किसी गाँव से अत्याचार की खबर आती तो वहाँ जाकर खुद पूछ-ताछ करते या राजेंद्र बाबू, अनुग्रह बाबू, धरणीधर बाबू इत्यादि से जाँच कराते । असल में जब सन् 1916 की लखनऊ काँग्रेस में लोगों ने उनसे चंपारन की त्रस्त जनता के संबंध में प्रस्ताव रखने को कहा तो बोले, ''अपनी आँखों से देखे बिना और इन बातों की जाँच-पड़ताल किए बिना मैं इस मामले में नहीं पड़ूँगा ।'' निलहे साहब के बँगलों में जाकर उनकी बातों को भी सुनते । यही वह सत्य था जिसका आचरण उनके जीवन का संबल था ।

आज तो बिना जाँच-पड़ताल के दोषारोपण करना ही सामान्य व्यवहार है । आज तो छोटी सी बात को बढ़ाकर समाचारपत्रों एवं गुमनाम चिट्ठियों में लिख भेजना मामूली बात है । आज सत्य धूलिधूसरित पड़ा है जैसे भितिहरवा में आश्रम भी उपेक्षित है । कैसी है चंपारन की यह भूमि ? मानो विस्मृति के हाथों अपनी बड़ी से बड़ी निधियों को सौंपने के लिए प्रस्तुत रहती है । 'गाँधी निधि' गाँधीजी द्वारा पावन किए गए स्थलों में कुछ स्मारक बना रही है । लेकिन क्या यहाँ कोई तीर्थ टिक पाएँगे ?

भितिहरवा के पास ही रामपुरवा है जहाँ ध्वस्त पड़े हैं दो अशोक स्तंभ; एक पर सिंह था और दूसरे पर बैल । पुष्ट मौर्य कला के नमूने । शायद रामपुरवा कोई बौद्ध तीर्थस्थल रहा हो । गंडक नदी के किनारे कई बौद्ध स्थल हैं–कुशीनगर, लौरिया, नंदनगढ़, अरेराज, केसरिया, चानकीगढ़ और वैशाली । कुशीनगर गोरखपुर जिले में है (अब कुशीनगर स्वतंत्र जिला है) जहाँ गंडक को नारायणी कहा जाता है । अब नदी कई मील हट गई है । भगवान बुद्ध की निर्वाण शय्या की वह मूर्ति निस्संदेह विराट है । संभवतः इस मूर्ति और मंदिर का निर्माण ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी में उन्हीं लोगों ने कराया जिन्होंने बोधगया का मंदिर बनवाया था । जिस स्थान पर कुशीनगर के निवासियों ने तथागत के शरीर को भस्म किया था वहाँ एक ध्वस्त स्तूप खड़ा है । तथागत की भस्म के ऊपर गंडक नदी के आसपास अनेक स्तूप बने, अनेक स्मारक बने । गंडक के पूर्वी तट पर बिहार में नंदनगढ़ का विशाल स्तूप प्राचीन स्थापत्य की अभूतपूर्व कृति है। इसका मुकाबला जावा का बरबदूर का मंदिर ही कर सकता है । अभी तक इसका काल निर्णय नहीं हो पाया है । 82 फुट ऊँचे, 1500 फुट वृत्ताकार इस स्तूप के शीर्षस्थल के निकट मैंने वह स्थान देखा जहाँ एक छत्राकार स्मारक के भीतर काँसे के बरतन में भोजपत्र पर लिखी चौथी शताब्दी की एक बौद्ध पांडुलिपि

पाई गई थी । थोड़ी ही दूरी पर अशोक का बनाया हुआ लौरिया नंदनगढ़ का सिंह स्तंभ है । मेरे विचार में यह अशोक का सबसे कलापूर्ण स्तंभ है । लेख भी स्पष्ट है । इस लेख, और उससे कुछ दक्षिण में अरेराज स्तंभ पर अंकित लेखों में शासन के सिद्धांतों का प्रतिपादन है । महामात्रों को जनता के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका आदेश है । पशुवध की मनाही की गई है, तत्कालीन कमिश्नरों को अपने कर्त्तव्य और आदर्शों की याद दिलाई गई है । आजकल का कमिश्नर, मैं, गगनस्पर्शी सिंह की भंगिमा और उसके नीचे खुदे लेखों को देखते-देखते मानो 2200 वर्ष पहले के प्रतापी किंतु करुणार्द्र स्वर की प्रतिध्वनि सुन पा रहा हूँ । वह स्वर आज भी कितना खरा है, आज के अधिकारी वर्ग के लिए भी कितना चुनौतीपूर्ण है !

लौरिया नंदनगढ़ से ही एक नदी रामपुरवा और भितिहरवा होते हुए उत्तर में नेपाल के निकट भिखनाथोरी तक जाती है । नाम है पंडई नदी और शायद इसी के सहारे भगवान बुद्ध और बाद में अनेक भिक्खु (भिखना शब्द से साम्य देखिए) जाते थे लुम्बिनी और नेपाल । फाह्यान और ह्वेनसांग भी इसी पथ से आए थे । लौरिया नंदनगढ़ निश्चय ही एक विशाल पावन स्थल रहा होगा । अनेक टीले खुदाई की प्रतीक्षा में सदियों का रहस्य अपने हृदय में छुपाए पड़े हैं ।

लौरिया के दक्षिण में अरेराज, अरेराज के दक्षिण में केसरिया और फिर वैशाली । यही तो वह पथ था जिससे भगवान बुद्ध अपनी अंतिम यात्रा पर गए थे । अपनी परम प्रिय नगरी, गणतंत्री लिच्छवियों की राजधानी वैशाली में अंतिम दर्शन के लिए भगवान ने अपने समस्त शरीर को गजराज की तरह घुमाया और बोले, ''आनंद, तथागत का यह अंतिम दर्शन है ।'' लिच्छवी रास्ता रोककर खड़े हो गए । बीच में नदी आ गई । तथागत ने अपना भिक्षापात्र उन्हें दे दिया । इसी वैशाली में अंबपाली ने तथागत को अपना आम्रकानन समर्पित किया था । और इसी वैशाली में जैन धर्म के तेजस्वी तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म हुआ था । आज जैन समाज अपनी इस पुण्य धरोहर को भूल गया है । ऐसे ही जैसे पौराणिक धर्मावलंबी हिमालय की तलहटी में भैंसालोटन की महत्ता को भूल से गए हैं । जहाँ हिमालय की छोटी पहाड़ियों के बीच गंडक चट्टानी दीवारों के बीच गुजरती है, वहाँ मैंने देखा घड़ियालों का निवास स्थल । किंवदंती है कि गज-ग्राह की लड़ाई वहीं शुरू हुई । पंचनद नदी गंडक से वहीं मिलती है । पंचनद के कुछ ऊपर तमसा नदी मिलती है । वहीं शायद वाल्मीकि आश्रम है । अनेक ध्वस्त मूर्त्तियाँ बिखरी पड़ी हैं । इस गंडक के सहारे-सहारे चलिए तो एक सौ तिहत्तर मील की दूरी पर पटना के सामने सोनपुर के निकट गंडक-गंगा के संगम पर हरिहरक्षेत्र मिलेगा जहाँ, कहते हैं, गज-ग्राह युद्ध समाप्त हुआ और गज का संकटमोचन हुआ ।

वर्तमान और अतीत की आद्यंतहीन कड़ी है गंडक नदी । न जाने कितने महात्माओं और संतों ने इसके किनारे तप और तेज पाया, किंतु गंडक कभी गंभीर न बन सकी और इसीलिए इसके किनारे तीर्थस्थल भी स्थाई न रह सके । हिमालय के चरणों में त्रिवेणी (भैंसालोटन) से लेकर सोनपुर के हरिहरक्षेत्र तक गंडक के किनारों पर ऐसे तीर्थों की मानो समाधियाँ बिखरी पड़ी हैं जो शायद अवसर मिलने पर अयोध्या, हरिद्वार, मथुरा, काशी बन जाते । पर गंडक तो उच्छृंखल कन्या ही रही—ज्येष्ठा—सहोदरा गंगा का गांभीर्य इसे सुहाया ही नहीं ।

तब अतीत की कौन स्मृतियाँ गंडक ने छोड़ी हैं ? भवन नहीं, मंदिर नहीं, घाट नहीं । हवाई जहाज से गंडक घाटी के दोनों ओर नाना आकृति के ताल दीख पड़ते हैं, कहीं उथले कहीं गहरे किंतु प्रायः सभी

शस्य-श्यामला धरती रूपी गगन के विशाल अंतस् में ठिठकी हुई बदहालियों की भाँति टेढ़े-मेढ़े, परंतु शुभ्र एवं निर्मल । इन तालों को कहते हैं चौर और मन । चौर उथले ताल हैं जिनमें पानी जाड़ों और गर्मियों में कम हो जाता है और खेती भी होती है । मन विशाल और गहरे ताल हैं । 'मन' शब्द मानस का अपभ्रंश है । गंडक के उच्छृंखल नर्तन के समय बिखरे हुए आभूषण हैं मानो ये मन और चौर । बाढ़ आई, तटों का उल्लंघन कर नदी ने दूसरा पथ पकड़ा । पुराने पथ पर रह गए ये चौर और मन जिनकी गहराई तल को स्पर्श कर धरती के हृदय से स्रोत को फोड़ लाई । वही मानस बन गए ।

ऐसा ही एक ताल है सरैयामन । बेतिया नगर से 4 मील दूर कच्ची और ऊबड़-खाबड़ सड़क से हम लोग पहुँचे एक मनोरम जंगल के किनारे । त्रयोदशी का चाँद अपना साम्राज्य फैलाए हुए था । बेतिया राज ने इस जंगल को सुरक्षित रखा और अब यह 130 एकड़ रकबे का अभय क्षेत्र है–जंगल विभाग की ओर से सागौन, युकलिप्टस, आम इत्यादि के वन लगाए जा रहे हैं । एक नर्सरी भी है किंतु प्राचीन जंगल को भी सुरक्षित रखे जाने की कोशिश की जा रही है । एक मील वनपथ पर चलने के बाद हम मन के किनारे पहुँचे । विशाल ताल, बीच में द्वीप और तीन ओर जलराशि । नौकाविहार को निकले । नन्हीं लहरियों पर चाँदनी के प्रतिबिंब खद्योत बार-बार झलक दिखाकर अंतर्धान हो जाते । नौका आगे बढ़ी । सामने रजतराशि-निस्सीम; बाईं तरफ द्वीप और कमलपत्र और दाएँ घने वृक्ष जिनकी छाया मानो नौका को ग्रसने को आतुर थी । बीच धारा में पहुँचने पर नाविकों ने कहा, "जल पीजिए, बड़ा स्वास्थ्यवर्धक है ।" बात यह है कि शताब्दियों से यहाँ किनारे पर लगे जामुन के वृक्ष समूहों से जामुन के अगणित फल गिरते रहे हैं और इस तरह सरैयामन के जल का वैद्यक सिद्धांत के अनुसार शोध होता रहता है । बेतिया नगर से अनेक अमीर बीमार इस जल को घड़ों में मँगाते हैं ।

सरैयामन का जल स्थिर है, निबद्ध है किंतु गंडक नदी का जल तो सदियों से चंचल रहा है । जिसने इतने तीरथ तोड़े, क्या वह कोई वरदान दे सकेगी उन असंख्य प्राणियों को जो इसकी घाटी में संघर्ष और अभाव का जीवन बिताते रहे हैं ? चंपारन जिले में मोटर से घूमते हुए जहाँ मैंने इतने ध्वस्त स्तूप, मंदिर और स्तंभ देखे वहाँ एक और भी प्रकार की प्राचीरें जगह-जगह मस्तक उठाए दीख पड़ीं । ये ईंटों और पत्थरों के निरुपाय खंडहर नहीं हैं । इनपर प्राचीन लिपियों में लेख भी नहीं । लेकिन नई कुदालियों और फावड़ों की छाप, नए पौरुष की छाप हैं इनपर । ये प्राचीरें हैं, गंडक घाटी योजना की नहरों के तटबंध जिन्हें लाखों मजदूर तैयार कर रहे हैं । एक होगी पश्चिमी नहर–एक सौ बीस मील लंबी, जिसका साढ़े ग्यारह मील नेपाल में पड़ेंगे । साढ़े अड़सठ मील उत्तर प्रदेश (गोरखपुर और देवरिया जिले) में और शेष बिहार के सारण जिले में । पूर्वी नहर की लंबाई 155 मील होगी । इसके द्वारा नेपाल और तिरहुत के विशाल क्षेत्र की आबपाशी होगी । इसके अलावा नेपाल के लिए एक पावर हाउस भी बनेगा । भैंसालोटन से ये नहरें निकलेंगी और वहाँ लगभग 3000 फुट लंबा बराज बन रहा है जिसके ऊपर से सड़क और रेल ले जाए जाने की संभावना है । कुल मिलाकर 41.49 लाख एकड़ जमीन की आबपाशी इन नहरों से होगी। कुल व्यय होगा लगभग चालीस करोड़ रुपए ।

भैंसालोटन में भारतीय इंजीनियर जंगल के बीच इस नवीन जीवन केंद्र का निर्माण कर रहे हैं । प्राणवान विद्युत तुल्य शिराओं का जाल फैला रहे हैं । मोटरबोट गंडक के वक्षस्थल को चीरकर आगे बढ़ रही थी ओर इंजीनियर मुझे बराज और नहरों की टेक्निकल बातें समझा रहे थे । और मैं सोच रहा हूँ–शायद

युग-युगों से होती आई गज और ग्राह की लड़ाई का अंत होने जा रहा है । दैन्य और अभाव के ग्राह के विकराल मुख में फँसे जन समुदाय का संकटमोचन करने के लिए एक अजेय पौरुषयुक्त नारायण के विराट रूप का निर्माण हो रहा है । ये नहरें ही उस नारायण की अनेक भुजाएँ हैं; बिजली के तारों का जाल ही तो उसका त्राणकर्ता चक्र है । और मैं मन ही मन नमस्कार करता हूँ इन इंजीनियरों को, विश्वकर्माओं को, मजदूरों को जो भगवान के इस नूतन विराट रूप के विधाता हैं; जिनकी बुद्धि और परिश्रम की गाथा कवि और कलाकार अंकित करें या न करें लेकिन जिनकी बनाई मूर्त्तियों में प्राण का संचार होते ही सदियों से भग्न मंदिर ज्योतित हो उठेंगे ।

ओ सदानीरा ! ओ चक्रा ! ओ नारायणी ! ओ महागंडक ! युगों से दीन-हीन जनता इन विविध नामों से तुझे संबोधित करती रही है । तेरी चिरचंचल धारा ने उनकी आराधना के कुसुमों, अगणित तीर्थों को ठुकरा दिया । पर आज तेरे पूजन के लिए जिस मंदिर की प्रतिष्ठा हो रही है, उसकी नींव बहुत गहरी है । इसे तू ठुकरा न पाएगी ।

❑❑❑

अभ्यास

पाठ के साथ

1. चंपारन क्षेत्र में बाढ़ की प्रचंडता के बढ़ने के क्या कारण हैं ?
2. इतिहास की कीमियाई प्रक्रिया का क्या आशय है ?
3. धाँगड़ शब्द का क्या अर्थ है ?
4. थारुओं की कला का परिचय पाठ के आधार पर दें ।
5. अंग्रेज नीलहे किसानों पर क्या अत्याचार करते थे ?
6. गंगा पर पुल बनाने में अंग्रेजों ने क्यों दिलचस्पी नहीं ली ?
7. चंपारन में शिक्षा की व्यवस्था के लिए गाँधीजी ने क्या किया ?
8. गाँधीजी के शिक्षा संबंधी आदर्श क्या थे ?
9. पुंडलीक जी कौन थे ?
10. गाँधीजी के चंपारन आंदोलन की किन दो सीखों का उल्लेख लेखक ने किया है । इन सीखों को आज आप कितना उपयोगी मानते हैं ?
11. यह पाठ आपके समक्ष कैसे प्रश्न खड़ा करता है ?
12. अर्थ स्पष्ट कीजिए –

    (क) वसुंधरा भोगी मानव और धर्मांधमानव–एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

    (ख) कैसी है चंपारन की यह भूमि ? मानो विस्मृति के हाथों अपनी बड़ी से बड़ी निधियों को सौंपने के लिए प्रस्तुत रहती है ।

13. लेखक ने पाठ में विभिन्न जाति के लोगों के विभिन्न स्थानों से आकर चंपारन और उसके आसपास बसने का जिक्र किया है वे कहाँ-कहाँ से और किसलिए वहाँ आकर बसे ?
14. पाठ में लेखक नारायण का रूपक रचता है और वह सांग रूपक है । रूपक का पूरा विवरण प्रस्तुत कीजिए ।
15. नीलहे गोरों और गाँधीजी से जुड़े प्रसंगों को अपने शब्दों में लिखिए ।
16. चौर और मन किसे कहते हैं ? वे कैसे बने और उनमें क्या अंतर है ?
17. कपिलवस्तु से मगध के जंगलों तक की यात्रा बुद्ध ने किस मार्ग से की थी ?

पाठ के आस-पास

1. पाठ में भगवान बुद्ध से जुड़े जिन स्थानों का उल्लेख है, उन्हें मानचित्र पर दर्शाएँ ।
2. चंपारन में गाँधीजी से जुड़े स्थानों के बारे में जानकारी एकत्र करें एवं उन स्थानों की यात्रा करने का प्रयास करें ।
3. गाँधीजी ने समूचे देश को, देश के कोने-कोने को अपनी आँखों से देखा था, उनकी सर्वप्रियता और शक्ति के पीछे यह जनसंपर्क बहुत बड़ा कारण था । निश्चय ही आपके जिले में गाँधीजी से जुड़े स्थल होंगे । ऐसे पुण्य स्थलों के बारे में जानकारी एकत्र करें एवं अपनी रिपोर्ट को विद्यालय के सूचना पट्ट पर लगाएँ ।
4. जगदीशचंद्र माथुर एक कर्त्तव्यनिष्ठ अधिकारी के साथ-साथ मनीषी साहित्यकार एवं कला मर्मज्ञ भी थे । प्रतिवर्ष आयोजित होने वाला 'वैशाली महोत्सव' इनके ही सद्प्रयासों का फल है । माथुर जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के संबंध में आप विशेष जानकारी एकत्र करें । इनकी रचनाओं को उपलब्ध कर उन्हें पढ़ें ।
5. गाँधीजी के शिक्षा दर्शन की चर्चा इस पाठ में है । दिगंत (भाग - 1) में 'गाँव के बच्चों की शिक्षा' पाठ के अंतर्गत भी उसका उल्लेख था, गाँधीजी के शिक्षा दर्शन की वर्तमान संदर्भ में क्या उपयोगिता है ? इस विषय पर गोष्ठी आयोजित करें ।
6. नान्यदेव कौन थे ? वे कहाँ से आए थे ? बिहार में सांस्कृतिक विकास के लिए उनका क्या योगदान है ? इतिहास की पुस्तकों और शिक्षक से जानें ।
7. गंडक नदी का प्रवाहपथ क्या है ? बिहार के मानचित्र में इसे प्रदर्शित कीजिए ।
8. गज-ग्राह की कथा क्या है ? मालूम करें ।

भाषा की बात

1. इन पदों के समास निर्दिष्ट करें –
   सदानीरा, शस्य-श्यामला, नववधू, महानायक, तीर्थयात्रा, शिक्षाप्राप्त
2. निम्नलिखित शब्दों का संधि विच्छेद करें –
   विक्रमादित्य, चित्रोपम, निष्कंटक, उल्लास, इत्यादि
3. निम्नलिखित शब्दों से वाक्य बनाएँ –
   मलीन, कनाई, पुल, छत्रछाया, प्रबंध, आदर्श
4. रेखांकित उपवाक्यों की कोटि बताएँ –
   (क) <u>सुलतान घोड़े से उतरा</u> और तलवार से उसने एक विशाल विटप के तने पर आघात किया ।
   (ख) <u>उसके गिरते ही बिजली सी दौड़ गई</u> उसके सैनिकों में, और हजारों तलवारें घने वन के वृक्षों पर टूट पड़ीं ।
   (ग) <u>वे लगभग एक साल रहे</u> और फिर अंग्रेज सरकार ने उन्हें जिले से निर्वासित कर दिया ।

शब्द निधि :

सदानीरा : जल से सदैव परिपूर्ण नदी
तलहटी : घाटी
परिहतवसना : जिसके वस्त्र खींच लिए गए हों
वनश्री : वन की शोभा, हरियाली
निस्पंद : शांत, अचंचल, स्थिर
उन्मत्तयौवना : अल्हड़ युवती
वीरांगना : वीर स्त्री
निर्वसन : नग्न, वस्त्रविहीन
भंजन : भंग करना, तोड़ना या ध्वस्त करना
कीमियाई प्रक्रिया : रासायनिक प्रक्रिया
प्राचीर : दीवार
दुर्भेद्य : जिसके भीतर घुसना कठिन हो, जिसे ढाहना मुश्किल हो
विटप : वृक्ष
शस्य : फसल
दरकार : अपेक्षा, जरूरत
जंगी : योद्धा, लड़ाकू
अनावृत : उघाड़ा हुआ, बिना आवरण के
उद्भव : जन्म, पैदाइश
मधेसी : नेपाल की तराई में रहनेवाले लोग और उनकी भाषा
धातृ : पालन–पोषण करने वाली, धाय
पुनर्वासित : (पुनर्वास से) फिर से बसाया गया
कलेउ (कलेवा) : नाश्ता
स्निग्ध : कोमल, चिकनी
चित्रोपम : चित्र से जिसकी उपमा दी जाए
निसर्ग : प्रकृति, स्वभाव
रैयत : प्रजा
अदायगी : वसूली
नजराना : भेंट, उपहार
रज : धूल
हेय : घृणा और उपेक्षा के योग्य, नीच
अतिरंजनापूर्ण : बढ़ाचढ़ा कर
आम्रकानन : आम का बगीचा
आबपाशी : जल से सिंचाई